शोध मंथन Vol. XV No.IV Oct.- Dec. 2024 ISSN: (P) 0976-5255 (e) 2454-339X
Impact Factor 8.877 (SJIF)

भारतीय संस्कृति से भारतीय संविधान तकः एक यात्रा

प्राप्तिः 23.10.2024
स्वीकृतः 21.12.2024

78

प्रो० (डॉ०) रीना सिंह
हिन्दी विभाग,
जवाहरलाल नेहरू मेमोरियल पी०जी० कॉलेज,
बाराबंकी उ०प्र०
ईमेलः *drreenasinghhindi@gmail.com*

सारांश

भारत की संस्कृति का मूल मंत्र है–'सर्वे भवन्तु सुखिनः' और इसी सूत्र को भारतीय संविधान ने आत्मसात् किया है; क्योंकि संविधान निर्माता इस बात को भली–भांति जानते थे कि राष्ट्र की अखंडता, संप्रभुता एवम् बंधुता बनाये रखने के लिए संविधान को उसकी संस्कृति से, उसकी जड़ों से, उसकी विरासत से जोड़ना ही होगा, इसलिए प्रत्येक अध्याय के पहले भारतीय संस्कृति का एक, आदर्श रूप चित्रों के रूप में प्रस्तुत किया है। भारत अपनी जिस सामाजिक संस्कृति और गंगा–जमुनी संस्कृति के लिए विश्व में जाना जाता है, संविधान ने इसी सामाजिक संस्कृति को संरक्षित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। प्रत्येक राष्ट्र की अपनी सांस्कृतिक विरासत होती है और भारतीय संविधान के माध्यम से इस विरासत को प्रत्येक भारतीय तक पहुंचाने का इसके अलावा और कोई सशक्त माध्यम नहीं हो सकता था। संस्कृति किसी भी राष्ट्र की आत्मा होती है, तो सभ्यता उसका बाह्य परिधान। संस्कृति विचार है, तो सभ्यता विस्तार। संस्कृति अगोचर है तो सभ्यता गोचर। संस्कृति एक मौन आचरण है, जो हमारे और आपकी धमनियों में रक्त की तरह प्रवाहित है, यही हमको भीतर से जीवित रखती है। संस्कृति का संबंध मानव की अंतर्मुखी दशा से है। जिस कर्म से, जिस भाव से हमारे संस्कार सुंदर बने, जिससे हमारे कृति में सौंदर्य एवम् दिव्यता स्पष्ट हो सके, वही संस्कृति है। संस्कृति की विशिष्टता ही यह है कि वह हमारी चेतना को, हमारे विचारों को ऊर्ध्वगामी करती है। मानसिक संरचना में जो भी कुशल और पशुत्व है, उसे दूर करने के लिए किए गए हमारे प्रयास ही हमें संस्कारवान बनाते हैं।[1] मानव अपने पूर्वजों की अनुभूतियों और अनुभवों एवम् स्वयं की अनुभूतियों, अनुभव से व्यक्ति और समाज का व्यक्तित्व तैयार करता है,इस व्यक्तित्व के निर्माण में जो कुछ भी सहायक है, वही है संस्कृति।

भारत की संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृति होने के बावजूद आज भी जीवंत है। वह न केवल भारत की बल्कि संपूर्ण विश्व की मानवता के विकास का मार्ग प्रशस्त कर रही है।
कुछ बात है कि हस्ती, मिटती नहीं हमारी,

सदियों रहा है दुश्मन, दौर–ए–जहाँ हमारा।

प्राचीन सांस्कृतिक मूल्य भारतीय संस्कृति के प्राण है–सत्यम् शिवम् सुन्दरम्, वसुधैव कुटुम्बकम्, सत्यमेव जयते, असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय,सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया।

ये हमारी संस्कृति का सार तत्व है। संस्कृति के संदर्भ में जो प्रयोग, ज्ञान, भाव, प्रतीक व चेतना भारतीय ऋषियों ने मानवता के समक्ष प्रस्तुत किये हैं वे भारत में जनमी तो हैं पर यह चेतना केवल भारतीयों के ही निमित्त हो, ऐसा नहीं है। श्रेष्ठ संस्कारों को वैसे भी किसी देश व काल की सीमा में बाँध ाा नहीं जा सकता। भारतीय संस्कृति मानव मात्र की संस्कृति है। इस संस्कृति की आभा तो सार्वकालिक और सार्वदेशिक है।

भारतीय संस्कृति के प्रस्थानत्रयी (गीता, उपनिषद् और ब्रहमसूत्र), महाकाव्य आदि भारत की समृद्ध संस्कृति के अमुल्य निधि है,जिनके एक–एक शब्द हमारा मार्गदर्शन करते हैं। आज आवश्यकता है पुनः भारतीय संस्कृति से जुड़ने की। इन ग्रंथों के पुनर्अध्ययन की, जिससे हमारे विचार शुद्ध परिष्कृत हो सकें 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का भाव जागृत हो सके। राष्ट्रीय शिक्षा नीति भी इसी उद्देश्य को आत्मसात् कर अपने लक्ष्य तक पहुँचने का प्रयास कर रही है।

भारतीय संस्कृति पर सवाल उठाने वालों ने इस संस्कृति को पाखंड से जोड़ा। यह उचित है, भारतीयों के एक वर्ग ने अपने व्यक्तिगत स्वार्थ से प्रेरित होकर पाखंडवाद को अपना लिया किन्तु भारतीय संस्कृति के जो मूल तत्त्व है, वे न तो अन्धविश्वास का पोषण करते है न पाखंड को। भारतीय संस्कृति के सरोवर में कुछ शैवाल भी उत्पन्न हुए जिन्होंने भारतीय धर्म और संस्कृति में गंदलापन लाने का प्रयास किया[2]। हो सकता है बहुत से लोग भारतीय संस्कृति पर सवाल उठाना चाहते हों, मेरा केवल उनसे यही आग्रह है कि वे भारत को एक लोकतांत्रिक देश तो मानते हैं और इस बात से भी इन्कार नही कर सकते हैं कि भारत का एक मजबूत संविधान भी है। वे कम–से–कम भारत के संविधान पर तो विश्वास करते हैं। संविधान सभा जब भारतीय संविधान को अंतिम रूप दे रही थी, बहस हो रही थी उस दौरान इस बात की चिंता थी कि भारतीय संविधान ऐसा हो जो भारतीय संस्कृति से जुड़ा हुआ दिखे। जिस तरह मजबूत जड़ के बिना कोई विशाल दरख्त नहीं खड़ा हो सकता, उसी तरह संस्कृति से जुड़े बिना भारतीय संविधान भी स्थायी नही रह सकता इसलिए भारतीय संविधान के प्रत्येक अध्याय के पहले एक चित्र दिया गया है जो कि भारतीय संस्कृति का प्रतीक है, आदर्श है। जिसमें प्राचीन भारतीय संस्कृति से लेकर आधुनिक भारत की संस्कृति का शानदार सफर चित्रों के माध्यम से दर्शाया गया है। सभ्यता के इतिहास में चित्रों के माध्यम से अपनी बात सरलता से संप्रेषित करने की परंपरा रही है और निश्चित रूप से यह एक आकर्षक माध्यम है। इन चित्रों को देने का उद्देश्य यह था कि जब भी हम संविधान के प्रत्येक अध्याय की मानसिक यात्रा प्रारंभ करें तो हमारे समाने एक आदर्श हो और उन चित्रों से जुड़े आदर्शों को आत्मसात् करके ही आप और हम उस पूरे अध्याय और अनुच्छेदों को पढ़े, क्योंकि इन चित्रों के माध्यम से भारत की सांस्कृतिक विरासत को उकेरा गया है। संस्कृति में जो शिव है जो सुन्दर उसे ही हमें आत्मसात् करना होगा और यही कार्य हमारे संविधान निर्माताओं ने किया। उन्होंने हमारी संस्कृति के आदर्श पहलुओं को संविधान के प्रत्येक अध्याय को पहले चित्रों के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

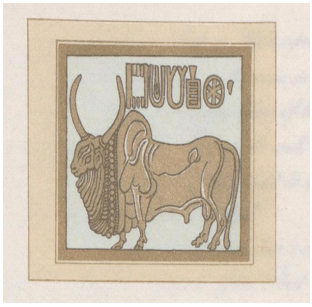

संविधान के पहले अध्याय 'संघ और उसके राज्य' में भारत के प्राचीन सिंधु घाटी सभ्यता के प्रमुख चिन्ह 'बैल' को चित्रित किया गया है, जो उस सभ्यता की मुहर है। नव उदित भारत के लिए यह मुहर शक्ति, एकता, सद्भाव एवम् समस्याओं के प्रति मजबूत प्रतिरक्षा प्रणाली का संकेत करता है। इस मुहर में जिस बैल को दर्षाया गया है वह अपने परिश्रम, शक्ति, उपयोगिता समर्पण एवम् प्रतिरक्षा प्रणाली के लिए जाना जाता है। भारतीय संस्कृति का महत्त्वपूर्ण, हिस्सा है कृषि संस्कृति। महाराष्ट्र, तमिलनाडु, कर्नाटक, छत्तीसगढ़ जैसे अनेक राज्यों में भाद्रपद मास की अमावस्या तक किसान खरीफ फसल के द्वितीय चरण का कार्य (निराई, गुड़ाई) पूरा कर लेता है फसलों के बढ़ने की खशी में किसानों द्वारा बैलों की पूजा कर कृतज्ञता दर्शाने के लिए पर्व मनाया जाता है। इस बैल के चित्र को अध्याय के ठीक पहले दर्षाने का यही उद्देश्य है कि संघ और राज्य इस आदर्श पर कार्य करें। एक दूसरे को मजबूती प्रदान करते हुए ही राश्ट्र को मजबूत किया जा सकता है। संविधान के विभिन्न भागों के प्रारंभ में जो भी चित्र मूल संविधान में अंकित किए गए हैंः उनके पीछे एक स्पश्ट प्रयोजन था और इन चित्रों के माध्यम से भारत की संस्कृति को स्पश्ट करने की पूरी चेश्टा की गई है। यह संविधान किस संस्कृति से अपने को जोड़ता है, किस संस्कृति को मान्यता और सम्मान देता है –बाद के चित्रों में यह तथ्य भली भाँति स्पष्ट होता है। इन चित्रों के भाष्य में न कहीं संदेह की गुंजाइश है और न उनके कोई अन्य अर्थ ही निकाले जा सकते हैं। ये सभी चित्र एक ओर जहाँ भारत की संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते हैं, वहीं उसके सांस्कृतिक व राजनीतिक इतिहास की ओर भी संकेत करते हैं।

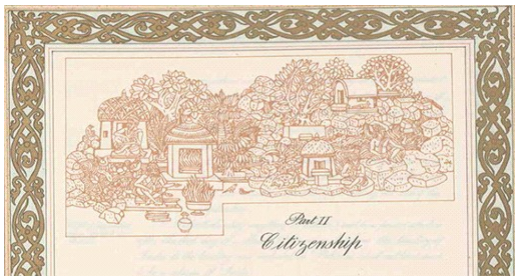

संविधान के दूसरे अध्याय 'नागरिकता' के आरंभ में वैदिक काल के गुरुकुल का यह चित्र अंकित है। वैदिक काल के गुरुकुल का यह चित्र देष की सांस्कृतिक नागरिकता को वैदिक काल से जोड़ता है।

चित्र में आचार्यगण विद्यार्थियों को उपदेश दे रहे हैं, यज्ञ कर रहे हैं। वैदिक काल में गुरु और शिष्य के बीच बहुत मधुर सम्बन्ध दिखा रहा है यह चित्र। वैदिक काल में गुरुकुलों की व्यवस्था गुरु और शिष्य दोनों संयुक्त रूप से करते थे। उस काल में सभी शिष्यों को सभी कार्य बारी–बारी से करने होते थे। शिष्यों के साथ किसी प्रकार का भेद–भाव नही किया जाता था। इस चित्र के माध्यम से संकेत दिया गया कि योग्य नागरिक बनने के लिए योग्य शिक्षा, ज्ञान एवम् संस्कार अनिवार्य है। इन तीनों का समन्वय करके ही योग्य नागरिक बनाया जा सकता है। इसलिए भारत के नागरिकों को अपनी अस्मिता की खोज इन गुरुकुलों में जहाँ ऋग्वेद एवम् उपनिषदों का जन्म हुआ, करनी पड़ेगी अपने आप को अपनी संस्कृति से जोड़ कर ही हम एक श्रेष्ठ नागरिक के रूप में राष्ट्र का विकास कर सकेंगे।

संविधान के अगले अध्याय 'मौलिक अधिकार' को ठीक पहले एक ऐसा चित्र है, जिसमें राम, सीता और लक्ष्मण लंका विजय के उपरांत ये तीनों पुश्पक विमान से अयोध्या की ओर लौट रहे हैं।

इस चित्र को दर्शाने का संदेष बड़ा गहरा है वह यह है कि मौलिक अधिकार आपको खुद–ब–खुद मिल जायेगें यदि आप अपने कर्तव्यों का निर्वहन भली–भांति करते रहे। देश के नागरिक को सभी मूल अधिकार जिस मर्यादा से जुडे हैं राम उस मर्यादा के प्रतीक है। रामराज्य तभी आएगा जब सभी अपने –अपने कर्तव्यों का पालन करेंगे।

''दैहिक, दैविक, भौतिक तापा, रामराज्य नहीं कहुही व्यापा''।[3]

भारतीय संस्कृति में अधिकारों की बात नहीं की गई केवल कर्तव्यों की बात की गयी है; क्योंकि कर्तव्यों के हिमालय से ही अधिकारों की गंगा बहती है। संयुक्त राष्ट्र संघ 1948 में विश्व मानवाधिकारों की घोषणा की थी। हमारी भारतीय संस्कृति में यह बात 'कर्मण्ये वाधि कारस्ते के रूप'[4] में बहुत पहले ले ली थी और 'गीता' का यह सार्वभौमिक संदेश संपूर्ण मानव जाति के लिए है। यह चित्र संकेत देता है कि आदर्श क्या है आपका अधिकार मांगने से पहले कर्तव्य करें। भारतीय संस्कृति में अधिकार की कोई संकल्पना नहीं है, जो भी संकल्पना है वह कर्म या कर्तव्य की है। आज के संदर्भों में विभिन्न देश मानवाधिकार के हनन को रोकने का प्रयास कर रहे हैं, लेकिन वे वैदिक संस्कृति से सीख लेकर मानवाधिकार विषयक मूल्य व मान्यताओं को स्वीकार कर लें तो उसके हनन का प्रश्न ही नहीं उठेगा। निःसंदेश मौलिक अधिकार विषयक मान्यताओं के उद्भव, उसकी स्थापना और उसके संरक्षण और संवर्धन के लिए भारतीय संस्कृति हमारा मार्ग प्रशस्त करती है।

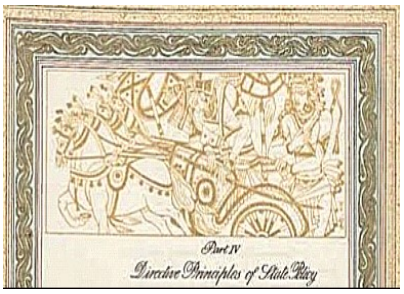

संविधान के एक अन्य अध्याय 'राज्य की नीति के निदेशक तत्त्व' के ठीक पहले जो चित्र है; उसमें महाभारत का युद्ध प्रारंभ होने को है अर्जुन अज्ञान एवम् क्लीवता से ग्रसित हो रहे हैं, इस अवसर पर नीति – उपदेश कृष्ण द्वारा अर्जुन को दिया गया, उपदेश चित्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है ये चित्र अनायास नहीं उकेरा गया संविधान में, उसके पीछे गहरा चिंतन है। कभी–कभी राज्य और राष्ट्र के लिए भलाई के लिए कठोर निर्णय भी लेने पड़ते हैं। अर्जुन अपनों पर शस्त्र नहीं उठाना चाहते हैं कृष्ण तब संदेश देते है 'गीता' का। 'गीता' भारतीय संस्कृति से जुड़ा एक ऐसा श्रेष्ठतम ग्रन्थ है जो नीति से जुड़े निदेशक तत्वों और कर्तव्यों को भली भाँति परिभाषित करता है। लोक कल्याण के लिए क्या करना चाहिए, इसकी विशुद्ध व्याख्या गीता में है। इस वास्तविकता को समझे और भारतीय संस्कृति का प्रतीक 'गीता' को राष्ट्रीय जीवन में स्थान दें; क्योंकि हमारे यहाँ युद्ध भी हानि–लाभ तथा जय–पराजय के भाव का अतिक्रमण करते हुए केवल कर्तव्य के रूप में है, इसे ही गीता में 'कर्मयोग' कहा गया है। प्रचलित सम्प्रदाय ग्रंथों में यह बार–बार कहा गया है जो अमुक ग्रंथ की आज्ञाओं का पालन करेगा वह व्यक्ति धर्मसम्प्रदाय के लिए अति उच्च माना जाएगा परंतु 'गीता' में एक भी वचन ऐसा नहीं है कि जो गीता के संदेशों को मानेगा वह सर्वोत्तम वैदिक अथवा हिन्दू होगा। कारण स्पष्ट है कि गीता सम्प्रदायिक, पंथाभिमान से परे है। अखिल मानव के कल्याण के लिए है।[5]

संविधान के 'वित्त, संपत्ति, संविदा और वाद अध्याय' के पहले नटराज और उनके पैरों के नीचे एक बौना व्यक्ति और स्वास्तिक का चित्र है जो संकेत करता है कि भौतिक सुखों के साथ उत्पन्न होने वाली आसुरि वृत्ति–लालच, ईर्ष्या द्वेष को ध्वस्त करके ही सुख – समृद्धी प्राप्त कर सकते

हैं। कितनी गहरी सोच का परिणाम है यह चित्र। हमारे संविधान निर्माता हमारे सामने एक आदर्श प्रस्तुत करना चाहते हैं; क्योंकि वह यह भली–भांति जानते हैं कि सारे विवाद इसी सम्पत्ति के वजह से उत्पन्न होते हैं इसलिए उन्होंने इस बौने आदमी जो कि मन के विकारों का प्रतीक है उसे पैरों से कुचलते हुए दर्शाया है।

फ्रांसीसी मनोचिकित्सक फिलिप पिनेल एवम् अमेरिका के बेंजामिन रश जिस मानसिक स्वास्थ्य की बात करते हैं, उसकी बात भारतीय वांग्मय में बहुत पहले ही कही जा चुकी है। इन मनोविकारों पर सुश्रुत, चरक ने चिकित्सा के क्षेत्र में और कबीर, तुलसी जैसे मुर्धन्य साहित्यकार विस्तार से चर्चा कर चुके हैं

1. मोह सकल व्याधिन्ह करमूला
   तन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला।[6]
2. काम बात कफ लोभ अपारा
   क्रोध पित्त नित छाती जारा।[7]
3. पढ़त गुनत रोगी भया ,बढ़ा बहुत अभिमान
   भीतर ताप जू जगत का, घड़ी न पड़ती सान

इन्हीं मनोविकारों का दमन करके मन का विरेचन करने की प्रेरणा यह चित्र दे रहा है। इसी चित्र में स्वास्तिक भी दर्शाया गया है, जिसका अभिप्राय है हम सब एक साथ, एक दिशा में एक सोच, एक मन एक विचार, एक संकल्प के साथ आगे बढ़ेगें और राष्ट्र को विकसित करेगें। यदि विचारों और कार्यो में समरसता नही होगी तो विकास संभव नही। ''ज्ञान दूर, कुछ क्रिया भिन्न है, इच्छा क्यों हो पूरी मन की एक दूसरे से न मिल सके यह विडम्बना है जीवन की।''[8] भारतीय संविधान में गुरुकुल, राम और कृष्ण को ही नहीं चित्रित गया है वरन् उनके साथ महात्मा बुद्ध, महावीर जैन, सम्राट अशोक, सम्राट विक्रमादित्य, नालंदा और गंगा अवतरण के अनेक चित्र हैं। संविधान के प्रत्येक अध्याय के पहले इन चित्रों को दर्शाने का उद्देश्य केवल यह था कि मानव सम्यक दृष्टि,सम्यक संकल्प सम्यक् वाणी, सम्यक् कर्म, के साथ सभी प्रकार के प्रलोभनों पर विजय प्राप्त करके मानव कल्याण करें।

''जो कली खिलेगी जहाँ/जो फूल जहाँ है। जो भी सुख जिस भी डाली पर/हुआ पल्लिवत/मैं उसे वही पर/अक्षत, अनाघ्रात, अस्पष्ट,अनाविल/हे महाबुद्ध/अर्पित करती हूँ तुझे।''[9]

चेतना के इस तप से ही राष्ट्रीय बल और ओज प्रकट होता है और इसी ढाल से ही राष्ट्र का निर्माण होता है। 'एकोऽहं बहुस्यामि' यही है भारतीय संस्कृति की आधारशिला। इस सिद्धान्त पर हुआ भारतीय संविधान का निर्माण।

''संस्कृति'' राष्ट्र की आत्मा होती है और वही उसकी सर्वाधिक मूल्यवान सृजनात्मक शक्ति भी है। संस्कृति वह चेतन ऊर्जा है जो राष्ट्र एकत्व के लिए अनिवार्य है। अतः राष्ट्र की अखंडता संप्रभुता व बंधुता बनाए रखने के लिए इस ऊर्जा को हमें सतत् संपुष्ट करना होगा। भारतीय संस्कृति का आधार है इसका अध्यात्म, इसका दर्शन, जो सत्य की खोज में सतत् प्रयासरत है इसीलिए हमारा वर्तमान राष्ट्रीय उद्घोष है 'सत्यमेव जयते'।[10]

संदर्भ

1. नरेन्द्र मोहन, भारतीय संस्कृति, पृ0सं0: 06।
2. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, भूमिका से।
3. तुलसीदास, रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, पृ0सं0: 458
4. श्रीमद् भगवद्गीता, द्वारा – कृष्णकृपाश्रीमूर्ति, द्वितीय अध्याय श्लोक संख्या : 47।
श्रीमद् भगवद्गीताः योगीराज मनोहर (व्यास आशय):
5. तुलसीदास, रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, पृ0सं0: 507।
6. तुलसीदास, रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, पृ0सं0: 507।
7. जयशंकर प्रसाद, कामायनी, रहस्य सर्ग, पृ0सं0: 12।
8. अज्ञेय, सन्नोट का छंद, पृ0सं0: 88।
9. नरेन्द्र मोहन, भारतीय संस्कृति, पृ0सं0: 38।
10. समस्त चित्र इंटरनेट से साभार।